Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 5 | ISSN : 2581- 6306

वैश्विक परिवर्तन और आधुनिक संस्कृत

डॉ0 (श्रीमती) मधु सत्यदेव
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग,
दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर,उत्तर प्रदेश, भारत

शोध आलेख सार– जीवन्त और प्रवाहमान साहित्य में कलात्मक सौन्दर्य के साथ युग की छवि समाहित होती है। युगबोध साहित्यकार को समाज की छवि रचना में अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित करता है। यही प्रेरणा उसे निर्देशित करती है कि वह समाज की समस्याओं के विभिन्न आयाम पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करे, साथ ही समाधान का संकेत भी रचना में उपस्थित हो। आधुनिक संस्कृत साहित्य की जीवन्तता का मूल्यांकन इसी दृष्टि से किया जाना चाहिए।

मुख्य शब्द–आधुनिक, संस्कृत, साहित्य, कलात्मक, सौन्दय, जीवन्त, प्रवाहमान।

जीवन्त और प्रवाहमान साहित्य में कलात्मक सौन्दर्य के साथ युग की छवि समाहित होती है। युगबोध साहित्यकार को समाज की छवि रचना में अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित करता है। यही प्रेरणा उसे निर्देशित करती है कि वह समाज की समस्याओं के विभिन्न आयाम पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करे, साथ ही समाधान का संकेत भी रचना में उपस्थित हो। आधुनिक संस्कृत साहित्य की जीवन्तता का मूल्यांकन इसी दृष्टि से किया जाना चाहिए।

सामान्यतः संस्कृत के आधुनिक काल का आरम्भ 19वीं शताब्दी से माना जाता है। डा0 हीरालाल शुक्ल ने इसका आरम्भ 1835 ई0 माना है। इसके मूल में वह राजनीतिक घटनाक्रम है जिससे संस्कृत जगत प्रभावित हुआ था। सन् 1835 में भाषा विषयक मैकाले का प्रस्ताव शासन द्वारा स्वीकृत हो जाने पर सम्पूर्ण संस्कृत जगत में विक्षोभ हुआ और प्रतिक्रिया स्वरूप संस्कृत की रक्षा हेतु रचनाएँ सामने आयीं। इससे प्रभावित होकर डा0 शुक्ल ने 1835 से लेकर 1920 तक में लिखे गये संस्कृत साहित्य को दरबारी संवेदना साहित्य से पूर्णतः अलग हृदय

के रक्त से सींचा हुआ माना है और इस अवधि को संस्कृत के नवजागरण का विकास काल घोषित किया। डा0 राजेन्द्र मिश्र ने देववाणी सुवासः की भूमिका में पुनर्जागरण काल (1784–1884), स्थापना काल (1884–1950) तथा समृद्धि काल (1950 – अब तक) के तीन भागों में विभक्त किया। डॉ0 जगन्नाथ पाठक ने रचनाकारों के आधार पर आधुनिक संस्कृत को तीन युगों में – राशिवडेकर युग 1890–1930, भट्ट युग 1930–1960 तथा राघवन–युग 1960–1980 में विभाजित किया।[1] इस प्रकार 19वीं शताब्दी से वर्तमान संस्कृत रचनाओं को आधुनिक संस्कृत में स्थान दिया गया है।

आधुनिक संस्कृत के काल में भारत पराधीनता की पीड़ा झेल रहा था। इस पीड़ा का अनुभव करते हुए संस्कृत रचनाकारों ने इस पर लेखनी चलायी। संस्कृत कवियों की प्रखर सामाजिक चेतना ने अंग्रेजों के शोषणतंत्र को पहचान कर कविताओं में उसके विरूद्ध प्रतिक्रिया दी। प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्त करने की शैली विविध प्रकार की थी। उदाहरणार्थ रामनाथ तर्करत्न द्वारा रचित **वासुदेव विजय** महाकाव्य का प्रकाशन 1980 में हुआ था। इसमें राष्ट्र के प्रति कवि की जागरूकता अभिव्यक्त होती है जैसे (उसका कीर्ति आलिंङ्गन करती है, सौभाग्य सम्पत्ति उसे वरण करती है, उसे लक्ष्मी अपनाती है प्रीति उसकी सेवा करती है जो दृढ़ता से शत्रु की लक्ष्मी के बाल पकड़कर उस पर अपना अधिकार कर लेता है), पारतन्त्र्य नरक को व्यक्त करता है, क्योंकि वह शौर्य को नष्ट कर देता है, सुरूचि को रोक लेता है, चित्त को तोड़ देता है, धन को बाँट देता है, नीति को रगड़ डालता है, तथा दासता को ला देता है।[2] यहाँ पारतन्त्र्य के प्रति कवि की पीड़ा अभिव्यक्त हुई है[3] और वह निर्णय लेता है कि आज हम तन्द्रारहित है और प्राणों के चले जाने पर भी स्वतन्त्रता के मंत्र को नहीं छोड़ेंगे। क्योंकि परतन्त्र्य के प्राप्त हो जाने पर यश के धनी लोगों के लिए मृत्यु शरण है।[4] इसी तरह संस्कृत पत्रिका **सूनृतवादिनी** के सम्पादकीय में **अप्पा शास्त्री** ने क्लाइव को लुटेरा कहा गया।[5] स्वाधीनता सेनानी महायेागी **अरविन्द** के संस्कृत काव्य **भवानी भारती** में कवि भारत माता का एक स्वप्नविष्ट स्थिति में साक्षात्कार करता है। उसके बिखरे बाल पर्वत शिखरों को समेटे है। उसकी दृष्टि में सागर प्रसूत है, उसके खास से नभ विदीर्ण हो जाता है और चरण धरने से धरती उोलती है।[6] यह कराल देवी भारत माता के रूप में कवि का आह्वान करती है। यह भारत माता उन भारतीयों को फटकारती हैं जो अपने आपको ब्राह्मण कहते हैं, पर म्लेच्छ अंग्रेजों के चरण चूमते है। वह भारत पुत्रों को अग्नि के समान बन जाने के लिए पुकारती है।[7] क्रान्तिकारी, स्वाधीनता के योद्धा कवि **निर्भय** ने अंग्रेजी शासन के समय अकाल पीड़ित देश की भयावह दशा का वर्णन करते लिखा कि ''सारा देश एक नंगा आदमी बन गया है जो धूप व शीत में बिना ओढ़नी के खड़ा है। उसकी देह से रक्त बह रहा है। यूरोप के गीधों का वह कौर हो गया है। वह एक श्मशान है जहाँ कोई रोने वाला नहीं है। वह एक भटकती आत्मा है जिसका कहीं कोई घर नहीं है।[8] गाँधी जी के अहिंसात्मक संघर्ष से प्रभावित होकर संस्कृत रचनाकारों ने उसे साहित्यिक अभिव्यक्ति दी। **विदुषी क्षमाराव** ने

'सत्याग्रह गीता' नामक महाकाव्य में गाँधी जी के जीवन और संघर्ष को चित्रित किया है। **'सत्याग्रह'** के विषय में उन्होंने लिखा कि ''शान्ति–मार्ग का अवलम्बन करने वाले लोग दुर्बल ही गिने जाते हैं लेकिन सत्याग्रह से बढ़कर कोई बल नहीं है, ऐसा जानो।''[9] गाँधी जी के चरित्र पर 1938 में **सत्यदेव वाशिष्ठ** ने **सत्याग्रह** नीतिकाव्य की रचना हैदराबाद जेल में रहकर की थी। इसमें कवि ने सत्याग्रह के महत्व को प्रभावशाली शैली में सामने रखा है।[10] गाँधी जी के चरित्र पर महात्मा (व्ही राघवन) **गाँधी गीता** (अनन्त विष्णु काणे) **गाँधी शत–श्लोकी** (गणपति शंकर शुक्ल), **गाँधीमाहात्म्य** (विजया राघवाचार्य), **गाँधीचरितम्** (चायदेव शास्त्री) **मोहनपंचाञ्यायी** (1931 ई0) **मोहन गीता** (सुरेन्द्र सेवी), **गाँधी प्रवहणम्** (महाभिक्षु), **वर्ण व्यवस्था** (दीपचन्द्राचार्य) आदि काव्य रचे गये। स्वतंत्र भारत में भी भारत के स्वाधीनता संग्राम को संस्कृत रचनाकारों की रचनाओं में समाहित करने का क्रम चलता रहा है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं है कि आधुनिक संस्कृत साहित्य में भारत के स्वाधीनता संघर्ष के विभिन्न आयाम विद्यमान है।

भारत पराधीनता से मुक्त हो इसके साथ यह भी आवश्यक है कि सवतंत्र भारत में स्वतंत्रता का फल अन्तिम भारतीय मनुष्य तक पहुँचे, समाज का सर्वांगीण विकास हो, यह चिन्तन भी आधुनिक संस्कृत साहित्य में उपस्थित रहा है। स्वाधीनता–संघर्ष के काल में ही संस्कृत साहित्य में सामाजिक चिन्तन दृष्टिगोचर है। इसके पश्चात् स्वाधीन भारतीय समाज की समस्याओं को गम्भीरता से इन साहित्यकारों ने लिया तथा गिरते राजनीतिक मूल्यों के प्रति चिन्ता प्रकट की। समाधान हेतु तिलक, नेहरू, सुभाष इत्यादि विभूतियों के साथ–साथ स्वामी दयानन्द सरस्वती, राजाराम मोहन राय, विवेकानन्द के विचारों को उनके व्यक्तित्व के साथ प्रस्तुत किया। बीसवीं शताब्दी के संस्कृत कवियों ने सामाजिक विषमता के प्रति आक्रोश प्रकट किया। **मंजुल पथंक पंतुल** ने लिखा कि ''समान धर्म वाले दो पुरूष हैं। उनमें एक भोग का आस्वाद ले रहा है और दूसरा पेट की आग में जलकर पशु की तरह दारूण रूप में मर रहा है।[11] **हरिदत्त पालीवाल निर्भय** इससे अधिक आक्रोश के साथ प्रश्न उठाते हैं कि जिन श्रमिकों के पसीने की धार जागत् को धुल रही है, वे स्वयं क्षुधार्त और नग्न है। माँ–बहनों का शीलहरण हो रहा है और बच्चे दाने–दाने को तरसते हैं, तो देश की स्थिति में बदलाव कहाँ आया।[12] वस्तुतः संस्कृत के आधुनिक रचनाकारों ने आधुनिक जगत् के उन समस्त मानव–मूल्यों को स्वागत–भाव से देखा जिनसे भारतीय जनमानस का कल्याण की सम्भावना जगी। **रमा चौधरी** का रूपक **लेनिनविजयम्** तथा **पद्मशास्त्री** का महाकाव्य **लेनिनामृतम्** इसी व्यापक चिन्तन को अभिव्यक्त करता है। लेनिन के शोषित जन के प्रति समर्पण भाव तथा संघर्ष के नेतृत्व को इन रचनाओं के माध्यम से ओजपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है।[13] इसी प्रकार स्वतंत्र भारत में नारी–चेतना का जो प्रचार–प्रसार हुआ उसे भी संस्कृत रचनाकारों ने अंगीकार किया। बाल–विवाह, दहेज प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, घरेलू हिंसा इत्यादि विषयों को संस्कृत की आधुनिक कविताओं, कथाओं, नाटकों तथा उपन्यासों आदि में मार्मिक शैली में उठाया गया है। नारी के प्रति समाज की भेदभाव पूर्ण दृष्टि के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा गया कि जब पुरूष के

समक्ष विदेश–यात्रा जैसी स्थिति आती है तब तो पुराणों आदि ग्रन्थों के निर्देश भुला दिये जाते हैं तब 'नारी' के सम्बन्ध में ही क्यों प्राचीन ग्रन्थों में लिखित मान्यताओं को आधार बनाया जाता है।[14] नारी चेतना की विभिन्न धाराओं की भारतीय परिस्थिति में क्या उपयोगिता है इससे प्रस्थान करते हुए आधुनिक संस्कृत में रचनाकारों ने सहजता के साथ नारी–चेतना को समाविष्ट किया है।[15] वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण के माध्यम से साम्राज्यवादी लूट के प्रति भी संस्कृत रचनाकारों की सतर्कता दृष्टिगोचर है। पिछले दो दशकों के संस्कृत साहित्य में साम्राज्यवादी शोषण, अपसंस्कृति तथा जतनशील मूल्यों के प्रति असंतोष को अभिव्यक्ति मिली है। उदाहरणार्थ **डॉ0 राधा वल्लभ त्रिपाठी** के साथ एककांकियों के संग्रह **प्रेक्षण सप्तकम्** के अन्तिम एकांकी **'प्रतीक्षा'** में आधुनिक समाज में घर आने में विलम्ब होने पर कन्या के प्रति चिन्ता और आशंकाओं का चित्रण है, इसी प्रकार **अभिराज राजेन्द्र मिश्र** ने आधुनिक भारत में मूल्यों के क्षरण के बारे में लिखा है कि – विश्वविद्यालयों में घूस (ट्यूशन फीस) लेकर व्याख्यान देते (उस) पशु को मैंने देखा।

रेलयान में बड़े मझे से शायिका (बर्थ) का विक्रय करते (उस) जानवर को मैंने देखा। सबके लिए दुस्सह विपत्ति पैदा कर (स्वयं) अट्टाहास करते (उस) जानवर को मैंने देखा स्वार्थ–सिद्धि के लिए राष्ट्र की आबरू–इज्जत को भी दाँव पर लगाते उस जानवर को मैंने देखा।[16] इन उदाहरणों से इस तथ्य को समझा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य के आधुनिक स्वरूप में आधुनिक भारत विभिन्न रूपों में उपस्थित है। जिस क्षेत्र में अभी प्रचुर मात्रा में लिखा जाना शेष है वह क्षेत्र है वर्तमान शोषण के विरूद्ध जनसामान्य का संघर्ष। वस्तुतः वर्तमान जन का संघर्ष ऐसा विषय है जिस पर अपेक्षित रचनाओं का अभाव प्रत्येक भाषा के वर्तमान स्वरूप में है। किन्तु सतर्क और सजग संस्कृत रचनाकार भविष्य में इस अभाव की पूर्ति करेंगे। ऐसी आशा उनके अब तक दायित्व निर्वाह की परम्परा को देखते हुए की जा सकती है।

सन्दर्भ

1. संस्कृत वांङ्मय का इतिहास – सप्तम खण्ड
2. कीर्तिस्तमालिङ्ति तं वृणीते सौभाग्यसम्पत् तमुपैति लख्मीः।
   प्रीतिर्मुहुस्तं भजते प्रकामं गृहणाति केशेज्वहितश्रियं यः।।
   वासुदेवबिजय 12/24
3. हिनस्ति शौर्य सुरूचिं रूणद्धि मिनत्तिचित्तं विवृणोति वित्तम्।
   पिनष्टिं नीतित्र्च युनक्ति दास्यं हा पारतन्त्र्यं निरयं व्यनक्ति।।
   वही 13/32
4. असुव्यपायेष्वपि नो जहीम् स्वतन्त्रतामनत्रमन्द्रिणोऽद्य।
   उपागतायां परतन्त्रतायां यशोधनानां शरणं हि मृत्युः।।
   वही 13/34
5. स एवायं यस्य खुले व्यापारः समपातयत् पारतन्त्र्यबन्धने यवनानामपि राज्यानि।
   सूनृतवादिनी
6. आलोलकेशैः शिरान्निगृह्य करालद्रष्ट्रैश्च विसार्य सिन्धून्।
   श्वासेन दुद्राव नभो विदीर्ण न्यासेन पादस्य च भूश्चकम्पे।।
   भवानी भारती (8)

7. उतिष्ठ भो जागृहि सर्जयाग्नीन् साक्षादधि तेजोसि परस्य शौरेः।
वक्षः रिथतेनैव सनातनेन शत्रून् हुताशेन दहन्नटस्व।। वही–18

8. एकं तनमृतनग्नाङ्गं निष्प्रच्छदमातपशीतम्
योरपगृध्रणामेककवलमहहा रक्तच्युतिदिग्धभू
एकं प्रेतवनं तद् यत्र न कश्चिच्चदोकालापी
को भ्राम्यन्नात्मा, यस्य न गेहः कोऽपि क्वापि।।
शङखनाद, पृष्ठ–180

9. दुर्बला ननु गण्यन्ते शान्तिमार्गावलम्बिनः।
परं सत्याग्रहाद् विद्धि नास्ति तीव्रतरं बलम्।।
सत्याग्रह गीता 10/35

10. सत्याग्रहज्ञानजुषो नरा ये तच्चावने नालमिहास्ति लक्ष्मी।
नूनं दवाग्नेः शमने समर्थो वायुःकदाचित्त समृद्धवेगः।।
सत्यदेव वाशिष्ठ–सत्याग्रह नीतिकाव्य

11. समानधर्मिणौ द्वौ पुरुषौ
उमयोरेकः भोगः स्वदते
उदरज्वालया अन्यो दग्धः
पशुवत् बीमत्सं म्रियते।।
(मंजुलमयङ्कपन्तुलः)

12. येषां श्रमसीकरो जगत्पालयते ते क्षुधिताः नग्नाः
सीदन्ती सम्पदामीशत्वं चोच्द्मश्रुमुखं जनरक्तपिबम्।
मातरो भगिन्यो मयेक्षिता शीलं जहतीर्वसनादि विना
कणहेतोः शिशवोऽतिदुःखिताः परिवृत्रा जगतः स्थितिर्नहि।
अमृत लता 22

13. प्रकृतिदत्तधनं हि धराधनं भवितुमर्हति नैकजनस्यतत्।
जनसमाजविकासनियोजितं धनमिदं जगतां सुखदं मतम्।।
लेनिनामृतम् 2/4

14. पुराणशास्त्रेषु निरूपित यत्
प्रवृत्रकाले कथमस्य संगति।
पुरातने भद्रभवानि कार्याण्यासन्नकाले दुरितान्ययि पस्युः।।
विदेशयात्रा प्रथमं विवर्जिता तदद्यकाले प्रतिभाविभूशणम्
स्त्रीणां दमः शोषणनीतिचिन्ता पुराणकालेऽद्यतने यथा तथा।।
अपराजितवधू महाकाव्यम् 10/13–14

डा0 पूर्णचन्द्रशास्त्री कलावटिया

15. वधू दहनम् – डा0 हरिदत्त शर्मा

16. विश्वविद्यालयेषु सोत्कोचम्
शब्दमानः पशुर्मया दृष्टः।।
शायिका विक्रयं सुखं कुर्वन्
रेलयाने पशुर्मया दृष्टः।।
दुर्विपर्त्ति विधाय सर्वेषाम्
साऽदृहासः पशुर्मया दृष्टः।।
स्वार्थसिद्धयै स्वराष्ट्रसम्मानम्
हन्त पणयन् पशुर्मया दृष्टः।।
मत्तवारणी